बालोपयोगी

नैतिक शिक्षा

प्रणेता

रामाश्रय तिवारी

प्रकाशक

श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान

भुवनेश्वरीपीठ, बिहसड़ा, मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण – नवम्बर, 2018

© श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान

प्रकाशक

श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान

भुवनेश्वरीपीठ, बिहसड़ा, मिर्जापुर (उ.प्र.)

मूल्य : 30/-

भूमिका

सारे ज्ञान-विज्ञान, अनेक प्रकार की भौतिक शक्तियाँ, जन्म-ओषधि-मंत्र-तप-समाधि तथा भक्ति-योग आदि की सिद्धियाँ, व्यक्ति तथा समाज के लिए तभी उपयोगी और आदरणीय मानी जाती हैं जब इनको धारण करने वाला व्यक्ति नैतिक-नियम (सामान्य मानव धर्म), का पालन स्वाभाविक रूप से करता है। नैतिक शिक्षा से रहित व्यक्ति को विद्या के बल से सम्पन्न होने के लिए कोई शिक्षा नहीं देना चाहिए। विद्यार्थी को नैतिक शिक्षा के द्वारा सुपात्र बनाकर ही अच्छे समाज और कुशल शासन की आशा की जा सकती है।

नैतिक शिक्षा प्रदान करने की क्रिया कई स्तरों से पूरी होती है। माता-पिता, शिक्षक तथा समाजीकरण (सत्संग) यह शिक्षा के तीन मुख्य स्रोत है। माता-पिता एवं परिवार के आचरण तथा उनकी बातों से बालक अमिट संस्कार प्राप्त करता है। इस स्तर पर सत्य, परोपकार, ईमानदारी आदि का मानसिक संस्कार एवं शारीरिक स्वच्छता, स्वास्थ्य के नियम, विनम्रता, सदाचार, बड़ों का आदर आदि का बाह्य संस्कार डालना, पालन-पोषण करने वालों का कर्त्तव्य है। बच्चे को संस्कार देने में बड़े लोग भी अधिक संस्कारित हो जाते हैं। बच्चों को मनोरंजन का साधन नहीं, प्रेम का पात्र और परिवार, समाज का भविष्य बनाना चाहिए। पैदायिशी संस्कार प्रबल होते हैं। इनके अच्छे रहने पर भी प्रयास से उत्कृष्टता लानी चाहिए। नैतिक शिक्षा द्वारा बुराई को बुरा मानने की बुद्धि तो पैदा ही की जा सकती हैं।

परिवार में बालक को शिक्षित करने का दायित्व बड़ों का होता है। बड़े होने पर बालक की स्वतः जिम्मेदारी भी हो जाती है।

आरंभ के दो-तीन वर्ष तक पूरी जिम्मेदारी बड़ों की ही है। इसके बाद परिवार,शिक्षक, बालक स्वतः तथा समाज के रूपों में, चार भाग में जिम्मेदारी बंट जाती है। परिवार की जिम्मेदारी अपने हाथ-पैर पर होने तक बनी रहती है। शिक्षक भी शिक्षण-काल तक ही जिम्मेदार होता है। इसके बाद बालक अपने संस्कारों के साथ समाज में क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा आगे बढ़ता है।

शिक्षक से सम्बद्ध होने पर बालक साथियों के सम्पर्क में भी आता है, शिक्षक के सुचरित का अनुकरण करते हुए, कुसंग से बच कर, विद्यार्थी जीवन की सफलता का मार्ग बनाता है। परिवार के लोग इस अवधि में परीक्षण करते रहें, तो आचरण सुरक्षित रहता है। बालक यदि वृद्धजनों तथा अनुकरणीय लोगों के साथ बैठने से परहेज करने लगे तो यह लक्षण है कि वह विपथ पर जा रहा है। ऐसे समय में अभिभावक की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। परिस्थितियों में परिवर्तन करके कुमार्ग से बचाना चाहिए। सदाचार और विद्यार्जन दो ही काम बालक के लिए होते हैं। तीसरा कार्य, अभिभावक के साथ रह कर ही करे।

बड़े होने पर मनुष्य के ऊपर आत्मसंयम एवं समाज तथा शासन के अंकुश होते हैं। आत्म संयम के होने पर मनुष्य निर्भय एवं परोपकारी रहता है। नैतिक शिक्षा की आवश्यकता इसीलिए है। इस विषय में श्रद्धा योग्य आर्षवाणी है —

गुरुः आत्मवतां शास्ता राजाशास्ता दुरात्मनाम्।

अन्तः प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।

अर्थात्, शास्त्र एवं गुरुजनों से प्राप्त नैतिक शिक्षा के कारण आत्म संयम करना प्रथम कोटि का संयम है। जो यह नहीं करता है, उसके ऊपर राजा के दण्ड का शासन होता है। जो उस दण्ड

से बच जाता है, उस के ऊपर यमदण्ड का शासन अनिवार्य है। असंयमी को घोर कष्ट मिलता है।

अतः अच्छा नागरिक और सुखी जीवन के लिए नैतिक शिक्षा अत्यावश्यक है। इस शिक्षा को देने वाला भी समाज का शुभकारक है। यह दोनों वातें श्रद्धा के योग्य हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह पुस्तक है।

पुस्तक का आकार छोटा रखने के लिए नियम, आदर्श एवं कहानियों को संक्षिप्त करके लिखा गया है। अभिभावक और शिक्षक विस्तृत करके इन्हें रोचक बनाकर बालकों को सुनाएँगे तो अधिक कारगर होगा।

आशा है कि नैतिकता सिखाने में यह प्रयास उपयोगी होगा।

-रामाश्रय तिवारी

श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान

विषयसूची

अध्याय -1 शौचाचार के सूत्र 9

अध्याय -2 सदाचार के नियम 13

अध्याय -3 पारिवारिक/सामाजिक नियम 16

अध्याय -4 धर्म के नियम 22

अध्याय -5 जीवन के आदर्श 27

अध्याय -6 सत्य और पाखण्ड का भेद जानना 33

अध्याय -7 महापुरुषों से प्रेरणा 38

अध्याय -8 सन्मार्ग का बोध 47

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्यवेत् ॥

मनु स्मृति 1/108,109

(वेद और स्मृति में सदाचार ही परधर्म बताया गया है। अतः इसके पालन में तत्पर रहना चाहिए। आचारहीन होने पर विद्याध्ययन का फल नहीं मिलता है। आचारवान् होने पर सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

(हमें सभी ओर से कल्याण प्राप्त हो)

अध्याय- 1

प्रातः उठने से लेकर सोने के लिए जाने वक्त के लिए ऐसे नियमों का ज्ञान तथा पालन करना जिनसे शरीर और बुद्धि दोनों विकसित हो सकें।

1. उठने पर माता-पिता और घर के वयोवृद्ध जन; सब का चरण छूकर प्रणाम करना।
2. शौच जाकर, हाथ-पैर अच्छी तरह साफ करना।
3. दांतों तथा जीभ की सफाई करना। इसके पहले कुछ न खायें।
4. कपड़े साफ-सुथरे पहनना (पुराने कपड़ों को भी साफ करके रखना)।
5. नाखून तथा बाल बड़े नहीं रखना।
6. जो काम अपने हाथ से हो सके उसे कोशिश करके स्वयं करना।
7. व्यायाम तथा आसन एवं तैरना सीखना और करना।
8. स्कूल जाने तथा सभी कामों में समय का पालन करना।
9. अर्थ सहित प्रार्थना जानना। सुबह तथा सोने के समय भी पाठ करने की आदत बनाना।

शेर और चूहे की मित्रता

एक बार सोते हुए शेर के ऊपर छोटा चूहा चढ़ गया। शेर ने उसे पकड़ लिया। चूहे ने कहा कि उसे छोड़ देने पर कभी वह भी शेर के काम आएगा। शेर ने छोड़ दिया।

कुछ दिन बाद शेर जाल में फंस गया। चूहे ने देखा कि शेर का उपकार करना चाहिए। उसने जाल काट कर शेर को बन्धन से मुक्त कर दिया।

सबक मिलता है कि कोई छोटा नहीं है। हर तरह के मित्र बनाना चाहिए। यह भी शिक्षा है, कि उपकार का बदला अच्छी बात है।

कछुआ और खरगोश

कछुआ बहुत धीरे-धीरे चलता है। खरगोश चंचल और तेज दौड़ने वाला होता है। तब भी एक कछुआ ने चलकर पहले पहुँचने की बाजी खरगोश से लगा लिया। कछुआ लगातार चलने में समर्थ होने के कारण जीतने की आशा कर बैठा। खरगोश बहुत आसानी से जीतने की आशा करके निश्चिन्त रहा।

दोनों ने एक साथ दौड़ना शुरू किया। खरगोश कुछ दूर जाकर झाड़ी में बैठकर आराम करने लगा, कछुआ चलता रहा। खरगोश सो गया और कछुआ लगातार चलकर पहले पहुँच कर बाजी जीत लिया।

सबक मिलता है किसी को छोटा समझ कर उपेक्षा करना या कमजोर मान लेना ठीक नहीं है। दुश्मन को मौका नहीं देना

चाहिए। दूसरी शिक्षा है कि अनवरत परिश्रम करने से असंभव कार्य भी संभव हो जाता है।

बुद्धि का बल

जंगल के राजा शेर के आदेश से प्रतिदिन एक जानवर उसके पास जाता था, जो शेर का आहार हो जाता था। एक दिन एक खरगोश की बारी थी। उसने अपनी जान बचाने के लिए बुद्धि का प्रयोग किया।

खरगोश देर से शेर के पास पहुँचा। इस पर शेर नाराज हो गया। खरगोश ने कहा यहां उसकी गलती नहीं है। रास्ते में एक दूसरे शेर ने उसे रोक लिया। किसी तरह बच के भाग आये। इस पर क्रोध में आकर शेर ने दूसरे शेर को दिखाने के लिए खरगोश से कहा। खरगोश ने एक कुएं में दिखा कर बताया कि दूसरा शेर इसी में रहता है। कुंए में अपनी परछाई देखकर तथा गरजने पर वापस आवाज सुनकर शेर को दूसरे शेर पर क्रोध बढ़ गया। वह अपनी परछाई वाले झूठे शेर को मारने के लिए कुंए में कूद कर मर गया।

इस तरह बुद्धि का बल शरीर के बल से बड़ा सिद्ध होता है।

प्रह्लाद

दैत्य राज हरिण्यकश्यप विष्णु से द्रोह करता था। अपने को ही ईश्वर मानता था। उसकी पत्नी विष्णुभक्त थी। माता के प्रभाव से पुत्र प्रह्लाद भी विष्णु भक्त पैदा हुआ। प्रह्लाद की भक्ति देखकर पिता उसको बहुत समझाता था, किन्तु प्रहलाद अपने पिता को ही समझाकर विष्णु भक्त बनने को कहने लगे। इस पर

पिता-पुत्र का सम्बन्ध इतना खराब हो गया, कि प्रह्लाद को मार डालने के लिए भी हिरण्यकश्यप प्रयास करने लगा।

पिता के अनेक उपाय करने के बाद भी प्रहलाद को कोई मार नहीं पाया। होलिका ने गोद में लेकर जलाने का प्रयास किया तो वह स्वयं जल गई और प्रह्लाद बच गए। पहाड़ पर से गिराया गया, किन्तु प्रहलाद सुरक्षित रह गए। अन्त में स्वयं मार डालने के लिए हिरण्यकश्यप उद्यत हो गया।

प्रह्लाद को खम्भे में बांध कर तलवार चलाने ही जा रहा था, कि खम्भा में से नृसिंहरूप में विष्णु भगवान प्रगट हो गए। हिरण्यकश्यप का पेट फाड़कर उसे मार डाला। प्रह्लाद को गोद में लेकर आश्वस्त कर दिया। बाद में प्रहलाद ने दैत्यों के राजा के रूप में धर्मपूर्वक राजा का कार्य किया।

विष्णु भक्त तथा धर्मात्मा होने के कारण इन्द्र भी प्रह्लाद से भय मानने लगे।

बाल्यावस्था में ही जीवन की उच्चतम सिद्धि पाने वालों में ध्रुव की तरह प्रह्लाद भी विख्यात हैं।

अध्याय- 2

पिछले अध्याय को दुहराना

1. सुबह सूर्योदय के पहले उठना।
2. ईश्वर को प्रणाम करके उनसे बुद्धि की कामना करना। धरती माता को प्रणाम करना।
3. अपनी तथा घर की सफाई के लिए कुछ परिश्रम करके इसमें योगदान देना।
4. शारीरिक परिश्रम की आदत डालना।
5. माता-पिता के कार्यों को सीखने एवं सहायता देने के लिए तत्पर रहना।
6. बड़े लोगों को प्रणाम करना, उनका आदर करना, उनकी बातों को ध्यान से सुनना।
7. बड़ों के पास बैठने की आदत रखना।
8. आरामदेह तथा शरीर की सुरक्षा के लायक वस्त्र पहनना।
9. माता-पिता की इच्छानुसार वस्त्र होने चाहिए। दूसरों को देखकर नकल न करें।

कहानियाँ एवं शिक्षाएं –

हंस और कौवा का साथ

एक पेड़ के नीचे, सघन छाया में, एक थका हुआ शिकारी सो रहा था। पेड़ पर हंस बैठा था। थोड़ी देर में शिकारी के ऊपर धूप आने लगी। हंस ने उदारता वश अपना पंख फैला कर शिकारी को छाया कर दिया। उसी समय एक कौवा आकर हंस

के बगल में बैठ गया। उसे छाया करना अच्छा नहीं लगा, अतः कौवा ने शिकारी के मुंह में बीट कर दिया। कौवा उड़के भाग गया। शिकारी जागकर क्रोध में आ गया। ऊपर हंस को देखकर उसी की हरकत समझते हुए शिकारी ने बाण से हंस को मार गिराया।

सबक यह है, कि उपकार करते समय भी होशियार रहे। दुष्ट के साथ कभी नहीं रहना चाहिए।

कुररी पक्षी का लोभ

एक कुररी पक्षी कहीं से मांस का टुकड़ा पायी। मुंह में रखकर वह अन्य पक्षियों को लालच पैदा कर रही थी। इस पर सभी पक्षी मिलकर उसे मारने लगे। चोट खाने पर उसका मुंह खुल गया और मांस का टुकड़ा बाहर चला गया। सभी पक्षी उसे मारना छोड़कर हट गए। इस घटना को देखते हुए एक बुद्धिमान आदमी ने शिक्षा ग्रहण किया कि- अच्छी वस्तु अकेले नहीं खाना चाहिए, अपने धन का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। संग्रह करने में आपत्ति आती है। त्याग कर देने पर संकट तुरन्त हट जाता है। यह तीनों शिक्षाएं सभी के लिए गुणकारी है।

दुष्ट पर विश्वास का फल

एक पथिक पानी पीने के लिए सरोवर के पास गया। वहाँ एक वृद्ध व्याघ्र बैठा था, जिसके हाथ में सोने का कंगन था। व्याघ्र ने पथिक से कहा कि सोने का कंगन वह दान देना चाहता है। पथिक को दान लेने के लिए बुलाया। पहले तो पथिक डर गया, किन्तु व्याघ्र ने अपने उद्धार और धर्मिकता का ढोंग बताकर पथिक को विश्वास में ले लिया। लोभ के कारण पथिक व्याघ्र से

दान लेने के लिए आगे बढ़ा, तो वहां कीचड़ में फंस गया। वृद्ध व्याघ्र धीर-धीरे चल कर पथिक के पास आ गया और उसे खा गया।

कथा का सारांश यह है, कि जो विश्वास योग्य नहीं है, उस पर विश्वास कभी न करें। लोभ से विवेक नष्ट हो जाता है। लोभ से सावधान रहें।

तीन मछलियों की कथा

एक सरोवर में बहुत सी मछलियां रहती थी। एक दिन मछुआरे ने देखकर जाल डालने की योजना बनाई। जलाशय की एक बुद्धिमान मछली ने योजना को सुन लिया। उसने अपने दो साथियों को भी दूसरे जगह चलने के लिए प्रेरित किया। उसके साथियों में एक चतुर किस्म की मछली थी और दूसरी आलसी थी। मछुआरे की योजना को जान कर भी बुद्धिमान मछली के साथ वे दोनों जाने को तैयार नहीं हुई। वह अकेले ही दूसरे जलाशय में जाकर निश्चिन्त हो गई। चालाक मछली ने भी तत्काल रक्षा के लिए उपाय सोच लिया। जब मछुवारे ने जाल डालकर उसे फंसा लिया तो वह मृत प्रायः हो कर पड़ी रही अचेत समझकर मछुआरे ने उसे निकालकर किनारे रख दिया। मौका पाकर वह मछली उचककर पुनः गहरे जल में चली गई। तीसरी मछली जाल में फंस कर छटपटाती रही और मछुआरा उसे उठा ले गया।

इस किस्से से शिक्षा लेनी चाहिए। बुद्धि के भरोसे सुरक्षित रहना सबसे अच्छा है। चालाकी से बचने का उपाय करना काम चलाऊ है, प्रशंसनीय नहीं है। आलस्य में भाग्य भरोसे रहना बहुत बुरी बात है। तीसरी कोटि के लोग मूर्ख और निन्दनीय माने जाते हैं।

अध्याय- 3

पिछले अध्याय को दुहराना

1. परिवार में होने वाले सभी कार्यक्रमों में भाग लेना तथा क्यों किया जाता है, यह जानना। कुलदेवता की पूजा आदि तथा उत्सव मनाने की विधि एवं कारण जानना।
2. समाज में प्रचलित कार्यक्रमों में भाग लेना तथा सहयोग करना। रामलीला, होली, दीपावली के कार्य में शालीनता के साथ सहयोग करना तथा उनका महत्त्व जानना। बड़ों से पूछना।
3. धार्मिक मान्यताओं में श्रद्धा।
4. टी.वी., मोबाइल आदि का प्रयोग कम से कम करना। इनके प्रयोग से मस्तिष्क, आँख, हृदय आदि के विकार होते हैं तथा गलत शिक्षा मिलती है, एवं समय का दुरुपयोग होता है।
5. किसी के यहाँ अनावश्यक न जाएं। अपना तथा दूसरे का समय न बेकार करें।
6. अपने कुल और शील की रक्षा के लिए बड़ों की सीख की उपेक्षा कभी न करें।
7. पारिवारिक एवं सामाजिक नियमों का अनुशासन स्वीकार करें।

सत्य हरिश्चन्द्र

सत्य के मार्ग पर अडिग रहने के लिए हरिश्चन्द्र का नाम विख्यात है। यह सूर्यवंशी राजा थे, जो मर्यादापुरुषोत्तम राम से कई पीढ़ी पहले पैदा हुए थे।

किसी समय वशिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा कि राजा हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित करना असंभव है। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। विश्मामित्र को वशिष्ठ से ईर्ष्या थी। अतः वशिष्ठ की बात असत्य सिद्ध करने के लिए विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र की घोर परीक्षाएं ली। धर्म का भय दिखाकर हरिश्चन्द्र के राज्य को ले लिया। पत्नी और पुत्र को लेकर हरिश्चन्द्र ने काशी में आकर चाण्डाल के यहां नौकरी किया। वर्तमान हरिश्चन्द्र घाट पर शव जलाने वालों से कर वसूल करने का काम करने लगे। इस दुर्दशा से भी हरिश्चन्द्र विचलित नहीं हुए। उनकी अन्तिम परीक्षा तब हुई, जब उनके पुत्र रोहित को सांप ने काट लिया। मृत शरीर को प्रवाहित करने के लिए हरिश्चन्द्र की पत्नी गंगा घाट पर आई। उससे भी चाण्डाल का कर मांगने में हरिश्चन्द्र ने संकोच नहीं किया। उनकी पत्नी के पास देने को कुछ नहीं था। अतः उसने अपनी साड़ी का भाग फाड़ कर दे दिया। इस परीक्षा में सफल होने के बाद विश्वामित्र ने यह स्वीकार कर लिया, कि हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा अडिग है। सारे कष्टों को विश्वामित्र ने ही योजना बनाकर दिया था। अतः तत्काल सभी कष्टों का निवारण करके विश्वामित्र ने उन्हें सत्य हरिश्चन्द्र के नाम से विख्यात कर दिया।

सत्य की महिमा यह है कि अन्त में उसी की विजय होती है।

कुत्ते को न्याय

रामराज्य को अच्छे शासन का आदर्श माना जाता है। राजा राम प्रजा के साथ ही सारे जीवों पर दया के साथ उनका पालन करते थे। सत्य, न्याय और धर्म के सभी अंग उस समय पूर्णरूप से प्रतिष्ठित थे।

एक दिन की बात है कि राम अपने सिंहासन पर बैठे न्याय की व्यवस्था देख रहे थे। उसी समय एक कुत्ता उनके दरवाजे पर आया। कुत्ता राजा राम से न्याय पाने के लिए आया था। राम के आदेश से कुत्ता बुलाया गया। पूछने पर उसने बताया कि एक ब्राह्मण ने अकारण उसे मारा है। ब्राह्मण को दण्ड देने की मांग किया।

ब्राह्मण को बुलाकर राजा राम के सामने लाया गया। उन्होंने मारने की बात स्वीकार कर लिया। राम ने कुत्ते से पूछा कि अपराधी को क्या सजा दी जाए, जिससे उसको संतोष हो सके। कुत्ते ने मांग किया कि इन ब्राह्मण को मठाधीश बना जाए। सबको आश्चर्य हुआ कि दण्ड के बदले पुरस्कार देने की बात कुत्ता क्यों कर रहा है। कुत्ते ने बताया कि पूर्व जन्म में वह मठाधीश था। अनेक तरह के अधर्म करने के कारण मरने के बाद कुत्ता हो गया। अतः मठाधीश बनाने से उसने संतोष व्यक्त किया। कुत्ते को भी न्याय देकर सन्तुष्ट किया गया।

इस आख्यायिका से शिक्षा मिलती है कि राजा को अपने धर्म-पालन में छोटे से छोटे व्यक्ति की बात सुननी चाहिए। सब को न्याय देना ही उसका धर्म है। दूसरी शिक्षा यह है कि मठाधीश या धार्मिक संस्थाओं में अधिकारी बनकर धर्म के नाम पर अधर्म करने से दुर्गति होती है।

गुरु नानक

गुरु नानक सिख सम्प्रदाय के प्रथम गुरु थे। दस गुरुओं में अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह थे। उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कट्टर खालसा सम्प्रदाय चलाया। इसका बीज गुरु नानक ने अपनी वाणी में पहले से ही डाल रखा था। गुरु नानक गृहस्थ होते हुए भी सन्यासी थे। वैराग्य और ज्ञान उन्हें जन्मजात सिद्ध थे। नानक शुद्ध हृदय और ज्ञान को ही मोक्ष का साधन मानते थे। वे ज्ञान की ही भक्ति करते थे। कर्मकाण्ड, योग, तंत्र आदि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण त्याग व ज्ञान ही हैं, इसे उन्होंने अपने जीवन में प्रमाणित किया।

नानक अपने प्रभावशाली भजन तथा वाणी से सब को वश में कर लेते थे। वे बहुधा ज्ञान का संदेश देने के लिए घूमते रहते थे। एक बार अपने शिष्य के साथ जा रहे थे, तो बाबर की सेना सामने से आ गई। सैनिकों ने उन दोनों को पकड़कर सामान ढोने के लिए दे दिया। नानक कुछ दूर सामान लेकर गए और एक स्थान पर बैठकर भजन गाना आरंभ कर दिया। सैनिक तथा बाबर स्वयं प्रभावित हो गए और संत समझ कर उन्हें छोड़ दिया। यह उनके निर्मल मन से भजन का प्रभाव था।

नानक एक गांव में जा रहे थे, तो वहां के लोग अहंकार में आकर नानक से कुछ भी न सुनने की योजना बनाई। गांव में घुसने के पहले एक गिलास में पूरा जल भरके उनके सामने एक आदमी खड़ा हो गया। नानक समझ गए कि वह कहना चाहता है, कि यहां सब पढ़े-लिखे जानकार हैं। उपदेश की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने एक फूल गिलास के पानी में रखकर लौटा दिया।

गांव वाले इतने में प्रभावित हो गए और उनका सत्कार किया। फूल रखने का अभिप्राय यह था, कि कुछ न कुछ ज्ञान और ग्रहण करने की सदैव आवश्यकता रहती है, ज्ञान अनन्त है।

नानक जहाँ भी गए, मन को पवित्र तथा हृदय को निर्मल रखने की शिक्षा देते गए। भोजन को भी पवित्र रखने की शिक्षा दी। गरीब के घर की रोटी और अमीर के घर की रोटी को अलग-अलग निचोड़ कर उन्होंने दिखाया कि गरीब की रोटी से दूध निकलता है तथा अन्यायी अमीर की रोटी से खून निकलता है। शुद्ध भोजन करने पर शुद्ध मन रहता है।

इस तरह से मन तथा हृदय की पवित्रता तथा भोजन की शुद्धि के साथ ईश्वर का भजन करे हुए गृहस्थ आश्रम में रहने की शिक्षा नानक से मिलती है।

संत एकनाथ

महाराष्ट्र के सिद्ध संतों की बड़ी लम्बी परम्परा है। एकनाथ विद्वान, आदर्श-गृहस्थ तथा ईश्वर भक्त एवं परोपकारी संत थे। उनके जीवन से शिक्षा हेतु कुछ घटनाओं को यहां दिया जा रहा है।

एक बार एकनाथ गंगोत्री का जल लेकर पैदल रामेश्वरम चढ़ाने जा रहे थे। दो हजार किलोमीटर की दूरी तय करके जल ले आए। पहुँचने के पहले रास्ते में एक गधा प्यास से तड़प रहा था। एकनाथ ने जल उस गधे के मुंह में डाल दिया। दया के इस कार्य से शंकर जी स्वयं प्रसन्न हो गए।

एक वृद्धा स्त्री, विधवा और गरीब थी। उसने कभी संकल्प किया था कि पति के श्राद्ध में एक हजार ब्राह्मण खिलाएगी।

गरीबी के कारण वह कर नहीं पा रही थी। एकनाथ से अपनी समस्या बतायी। एकनाथ स्वयं अपने लड़के के साथ, भोजन करने को तैयार हो गए। भोजन करने के बाद उस वृद्धा से पत्तल उठाने को एकनाथ ने कहा। आश्चर्य हुआ कि पत्तल के नीचे दूसरा जूठा पत्तल मिलता गया। इस तरह एक हजार पत्तल तथा एक पत्तल लड़के का, कुल एक हजार एक पत्तल निकले। इतने ब्राह्मण खिलाकर वृद्धा संतुष्ट हो गई।

एकनाथ कभी क्रोध नहीं करते थे। गाँव के कुछ बदमाश लोगों ने एक दुष्ट आदमी को भेजकर एकनाथ को क्रोधित करने की योजना बनाई। दुष्ट व्यक्ति ब्राह्मण अतिथि के रूप में जाकर अनेक तरह से एकनाथ तथा उनकी पत्नी को क्रोधित करने का उपक्रम किया। अतिथि सत्कार को धर्म समझते हुए एकनाथ धैर्य से सहते गए। उनकी पत्नी को अभद्र शब्द कहने तथा गंदी हरकत करने पर भी क्रोध न आया। इस पर वह दुष्ट व्यक्ति भी भयभीत होकर माफी मांगने लगा। एकनाथ ने सत्कारपूर्वक उसे विदा किया।

इस तरह दया, परोपकार, धैर्य, अतिथि सेवा, संतोष आदि की शिक्षा देने वाली बहुत से घटनाएं हैं, जिनसे प्रेरणा ली जानी चाहिए। ईश्वर की कृपा शुद्ध हृदय से मिलती है, ऐसा विश्वास करना चाहिए।

अध्याय-4

पिछले अध्याय को दुहराना

1. अच्छा या बुरा का निर्णय करना। जिस काम को करके उसे छिपाने की इच्छा होती है, वह काम बुरा है। भय, लज्जा पैदा करने वाला काम बुरा है। अच्छे काम को बताने की इच्छा होती है, तथा प्रशंसा से प्रसन्नता होती है। यही लक्षण है।
2. कर्मों का फल अवश्य मिलता है। बुरे काम का फल तत्काल या बाद में कभी न कभी भोगना ही पड़ेगा।
3. ईश्वर है, जो जगत् का कर्ता, हर्ता, धर्ता है। वह दण्ड और पुरस्कार दोनों देता है।
4. पुनर्जन्म होता है। अच्छे काम से सुखी और बुद्धिमान घर में जन्म होता है।
5. सत्य सबसे बड़ा धर्म है। केवल सत्य का पालन करके कोई भी बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति बन सकता है।
6. परोपकार करना बहुत बड़ा धर्म है। परोपकारी का उपकार ईश्वर करता है।
7. सत्य और परोपकार की भावना होने पर धर्म का सीधा मार्ग मिलता है।
8. अपना कर्त्तव्य सत्यनिष्ठा से करने पर मनुष्य को भय नहीं रहता है।

सत्यवीर सुकरात

यूरोप में विचारों की क्रान्ति करने वाले लोगं में सुकरात का नाम सबसे पहले लिया जाता है। अपने विचारों तथा तर्क द्वारा वह सभी को प्रभावित कर लेता था। सत्य, न्याय तथा मानवीय गुणों का प्रचार करना उसका स्वभाव था। नवयुवक उससे बहुत प्रभावित होते थे।

शासन-सत्ता को समाजिक न्याय और सत्य बहुधा बाधक होती है। उस समय के राजा ने सुकरात को नवयुवकों को बहकाने वाला कह कर उसे अपराधी घोषित कर दिया। सुकरात को फाँसी की सजा सुनाई गई।

सुकरात के शिष्य प्लेटो (अफ्लातून) आदि बहुत दुःखी हुए। उन शिष्यों ने मिलकर जेलर को घूस देकर राजी कर लिया, कि सुकरात को जेल से भाग जाने दे। जेलर के राजी होने पर शिष्यों ने सुकरात से भाग चलने के लिए जोर लिया। इस बात को अस्वीकर करते हुए सुकरात ने फाँसी पर चढ़ना ही पसंद किया। यह उसे सत्यवीर तथा जीवन के रहस्य को जानने वाला सिद्ध करता है।

उसका प्रत्येक संदेश अपने शिष्यों को बताया कि जीवन का मूल्य होता है। जीने तथा मरने दोनों हालत में मूल्य मिल सकता है। फांसी की सजा भोगना, सत्य के लिए बलिदान है। अतः जीवन का सबसे अधिक मूल्य इसको स्वीकर करने में मिलेगा। भागना सत्य की पराजय है।

दूसरा संदेश – विष पीने का बाद अर्ध चेतना की हालत में सुकरात को याद आया कि एक दुकानदार से उधार लिया था, जो दिया नहीं गया। अपने शिष्यों को देने का वादा कराके वह तुरन्त मर गया। ऋणी नहीं मरना चाहिए।

मृत्यु के समय तक सत्यनिष्ठा में दृढ़ता के लिए सुकरात अमर हैं।

सत्तू यज्ञ

युधिष्ठिर की यज्ञ में एक नेवला आया जिसका आधा शरीर सोने का था। लोग बहुत आश्चर्य में पड़े। नेवला भोजन के बाद हाथ धोने के गंदे जल में लोट-पोट रहा था।

युधिष्ठिर को भी समाचार मिला। सभी एकत्र होकर नेवला से सोने का शरीर तथा पानी में लोटने का रहस्य पूछा। नेवले ने कहा कि एक सत्तू यज्ञ हुआ था। वहां जूठन में लोटने से आधा शरीर सोने का हो गया। वहां जल कम था। इस यज्ञ का बड़ा नाम है। अतः पूरा शरीर सोने का करने के लिए यह काम कर रहा हूँ। किन्तु निराशा है कि उस यज्ञ की तरह फल यहाँ नहीं मिल रहा है।

पूछने पर सत्तू यज्ञ का पूरा किस्सा नेवले ने सुनाया। एक ब्राह्मण ने उंछ वृत्ति से अन्न इकट्ठा करके सत्तू बनाया। परिवार सहित भोजन के लिए तैयारी के समय एक अतिथि आ गए। भूखे ब्राह्मण तथा उसके परिवार के सदस्यों ने भी अपना-अपना हिस्सा देकर अतिथि को तृप्त किया। ब्राह्मण को सपरिवार स्वर्ग प्राप्त हुआ। अतिथि ईश्वर ही थे। वहीं पर जल में लोटने से सोने का शरीर मिला।

युधिष्ठिर का अहंकार समाप्त हो गया। शिक्षा मिलती है कि अतिथि सेवा तथा पवित्र अन्न का दान सभी यज्ञों से बढ़कर है।

परोपकारी जटायू

परोपकार बहुत बड़ा धर्म माना जाता है। जटायू के आख्यान से यह बहुत स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। सीता का हरण करके रावण जाने लगा तो जटायु ने अपने प्राणों की आहुति देने के लिए ही युद्ध किया। वह जानता था कि रावण से जीतना असंभव है। फिर भी अच्छे काम के लिए प्राणों का मोह छोड़ कर जटायू ने एक आदर्श स्थापित किया। इस साहस तथा परोपकार का फल राम ने तुरन्त दिया। अपने पिता दशरथ की तरह सम्मान देते हुए राम ने जटायू की अन्त्येष्टि किया। उसे रामायण में परम बड़भागी कहा गया है।

उपकार की भावना और अनीति का विरोध करने की शिक्षा जटायू की कथा से मिलती है।

द्रोणाचार्य का स्वाभिमान

द्रोणाचार्य ब्राह्मण कुल के थे, किन्तु अस्त्र विद्या के ज्ञान एवं आचार्य के रूप में सर्वोत्तम थे। महाभारत की लड़ाई में जितने प्रमुख वीर लड़े थे, उनमें भीष्म तथा कर्ण, जो परशुराम के शिष्य थे, उन्हें छोड़कर शेष अर्जुन आदि सभी द्रोणाचार्य शिष्य रहे हैं। द्रोणाचार्य के जीवन में घटनाएँ बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है, जो शिक्षाप्रद भी है।

पांचाल नरेश द्रुपद द्रोणाचार्य के गुरुभाई और बाल्यावस्था के मित्र थे। अश्वत्थामा के पैदा होने पर उसके दूध की व्यवस्था हेतु द्रोणाचार्य ने मित्रभाव से द्रुपद से एक गाय मांगी। द्रुपद ने गरीब

ब्राह्मण को मित्र मानने से इंकार कर दिया। इस पर आहत होकर द्रोणाचार्य ने अर्जुन आदि शिष्यों को समर्थ बनाकर उनके द्वारा द्रुपद को बन्दी बना लिया। द्रुपद का आधा राज्य लेकर उन्होंने अपनी सम्पन्नता को प्रमाणित किया, और बराबर होने के कारण मित्र मानने को विवश किया, यह स्वाभिमान का उदाहरण है।

द्रुपद अहिक्षत्रा का राज्य लेकर भी द्रोण ब्राह्मण की तरह ही रहे। राज्य भोग का त्याग किया। यह उनका त्याग और स्वधर्म पालन है।

द्रुपद ने यज्ञ के द्वारा धृष्टद्युम्न नामक पुत्र को प्राप्त किया, जो द्रोणाचार्य को मारने के उद्देश्य से प्राप्त किया गया था। इसे जानते हुए भी द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को अस्त्रविद्या का दान किया। यह द्रोणाचार्य की उदारता, निर्भयता तथा धर्मनिष्ठा का प्रमाण है।

द्रोणाचार्य अपने शिष्य अर्जुन से बहुत प्रेम करते थे। किन्तु महाभारत के युद्ध में वे अर्जुन के विरुद्ध ही लड़े। इसका कारण था, कि वे भीष्म पितामह द्वारा दिए गए सम्मान को न भूलते हुए, भीष्म के साथ रहना पसंद किये, यह द्रोणाचार्य की कृतज्ञता का प्रतीक है।

महाभारत युद्ध में द्रोण का पराक्रम सबसे अधिक था। वे सोलह वर्ष के बालक की तरह चंचल दिखाई पड़ते थे। अपने सेनापतित्व के अन्तिम दिन उन्होंने कुछ ही घण्टों में पाण्डवों की सेना के पांच में तीन हिस्से को मारकर एक आश्चर्यजनक युद्ध किया। इतना होने पर भी वे योद्धा नहीं ब्राह्मण ही बने रहे, यह उनके बुद्धि की स्थिरता है।

आचार्य द्रोण से स्वाभिमान, स्वधर्म पालन, कृतज्ञता, त्याग आदि सद्‌गुणों की शिक्षा मिलती है।

अध्याय- 5

पिछले अध्याय को दुहराना

1. मनुष्य का जन्म इस संसार में सर्वोपरि योनि है। पूर्वजन्म के पुण्यों का फल है।
2. इस जीनव का महत्त्व है, उसे समझना तथा समय, धन तथा शक्तियों का सदुपयोग करना।
3. बुरे काम और कुसंस्कारों से बचना।
4. राम-कृष्ण जैसे युगपुरुष; तुलसी, सूर, कबीर जैसे भक्त; तिलक, गाँधी जैसे महापुरुष लोगों से प्रेरणा लेकर अच्छा कर्म करना।
5. जीवन में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चार की कामना करनी चाहिए। इन चारों में बड़ा एवं छोटा का भेद समझना चाहिए।
6. कर्म का महत्त्व सबसे अधिक होता है। इससे कामनाओं की सिद्धि तथा धन-सम्पत्ति मिलने पर सुखी जीवन होता है।
7. अधर्म से प्राप्त सुख बाद में दुःख देने वाला होता है। धन से धनी भी दुष्ट हो सकता है। अच्छा तो सदाचार से ही कहा जाता है।
8. वृद्धावस्था तक सुखी रहने के लिए आरंभ से ही उद्देश्य बनाने में जीवन का मार्ग सरल और सीधा रहता है।
9. घर, स्कूल, गांव तथा समाज में अच्छे काम से नाम कमाना जीवन का उद्देश्य बनाना चाहिए।

संत रविदास

संत रविदास का जन्म काशी में एक ऐसे परिवार में हुआ था जहाँ मोची का काम ही पैत्रिक व्यवसाय था। रविदास भक्ति करने में लीन हो गए। स्वच्छ हृदय होना जन्म-जात गुण था। ईश्वर की कृपा प्रगट होने में देर नहीं लगी। थोड़े ही दिनों में रविदास विख्यात संत मान्य हो गए। इतनी प्रतिष्ठा होने पर भी वे अपना पैतृक व्यवसाय ही करते रहे। संत रविदास की सिद्धियों के विषय में बहुत सी घटनाएं प्रसिद्ध हैं। उन्होंने ही कहा था कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। मन का निर्मल होना ही उनका धर्म था।

एक बार कबीर दास के पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली दोनों संत रविदास के पास गए। पानी पीने के लिए रविदास ने चमड़े वाली कठौती का जल दे दिया। कमाली ने पानी पी लिया, किन्तु कमाल ने नहीं पिया। कुछ दिन बाद कमाली की शादी हो गई। वह मुल्तान चली गई। एक बार कबीरदास अपनी लड़की के यहां, पुत्र कमाल के साथ गए। कमाली भोजन बना कर प्रतीक्षा कर रही थी, तभी कबीरदास पहुँच गए। भोजन तैयार जानकर कबीर ने पूछा कि मेरे आने की सूचना तुम्हें कैसे मिली। इस पर कमाली ने बताया कि रविदास के यहाँ पानी पीने से हमें सिद्धि मिल गई है कि क्या होने वाला है, यह जान जाती हूँ। कमाल को दुःख हुआ कि उसने पानी नहीं पिया। बाद मे कमाल ने रविदास के यहां जाकर पानी मांगा। रविदास ने कहा वह पानी तो मुल्तान चला गया। शंका करने वाले को फल नहीं मिला।

संत रविदास कोई तीर्थ-व्रत नहीं करते थे। शुद्ध हृदय से ईश्वर भजन करते थे। प्रयाग स्नान के लिए किसी भक्त ने कहा

तो उन्होंने एक सोपाड़ी उसी आदमी से भेज कर गंगा जी को चढ़ाने के लिए कहा। उस आदमी ने गंगाजी में जाकर सोपाड़ी डाला, तो एक कंगन देते हुए गंगाजी ने उसे भक्त रविदास को देने के लिए कहा। इस तरह की घटनाएं संत रविदास के विषय में प्रसिद्ध हैं। उनके जीवन से सादगी, विनम्रता तथा स्वधर्म-पालन की शिक्षा मिलती है। अपने कर्मों का फल ईश्वर को समर्पित करने से सिद्धि मिलती है, यह उन्होंने प्रमाणित कर दिया।

दिलीप की गुरुभक्ति

राजा दिलीप राम के पूर्वज रघु के पिता थे। न्यायपूर्वक राजकाज करते हुए बहुत दिन हो गया, किन्तु पुत्र के अभाव में वे दुखी हो गए। एक दिन अपनी पत्नी के साथ गुरु वशिष्ठ के यहाँ गए। दूर ही रथ रोककर जूता भी निकाल कर भक्ति के साथ आश्रम में गए। वशिष्ठ ने राजा की बात सुना ही था, तब तक नन्दिनी गाय आ गई। वशिष्ठ की यह गाय कामधेनु के ही तुल्य थी। वशिष्ठ ने दिलीप को गाय की सेवा करके उसे सन्तुष्ट करने का आदेश दिया।

राजा अपनी पत्नी के साथ गाय की सेवा में दिन-रात तत्पर रहने लगे। एक दिन राजा नन्दिनी को चराने के लिए वन की ओर जाते हुए उसके पीछे-पीछे चलने लगे। नन्दिनी की सेवा में कोई गलती न हो, इसका ध्यान देने पर भी उस दिन एकाएक शेर ने आकर नन्दिनी पर आक्रमण कर दिया। गाय चिल्लाई। राजा ने धनुष पर चढ़ाने के लिए तीर निकलना चाहा, किन्तु उनका हाथ पीछे ही फंसा रह गया। असहाय होकर दिलीप ने शेर

से प्रार्थना किया, कि वह गाय को छोड़ कर उन्हीं को खा जाय। शेर ने राजा को मूर्ख कहते हुए समझाया कि गुरु को सहस्रो गाय देकर संतुष्ट किया जा सकता है, प्राण देने में बुद्धिमानी नहीं है। दिलीप ने शेर की बात को अस्वीकार करके उसके सामने अपने आप को समर्पित कर दिया।

यह तो नन्दिनी ने परीक्षा लिया था। परीक्षा में सफल पाकर नन्दिनी ने अपना दूध पिलाकर आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद से ही रघु जैसा तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ।

दिलीप का आख्यान गुरुभक्ति, गो-सेवा, साहस तथा धर्म की रक्षा के लिए शिक्षा देता है।

पवित्र दान

एक महात्मा किसी राजा के यहां याचना करने गए। राजा देने के लिए तैयार हो गए। महात्मा ने उनके आय-व्यय को जानना चाहा। राजा ने अपने धन का स्रोत तथा खजाने की स्थिति से अवगत कराया। महात्मा ने दान लेने से इनकार कर दिया। एक तो धन शुद्ध कमाई से नहीं एकत्रित था, दूसरे जो कुछ था, प्रजा के पोषण भर के लिए था।

राजा दुखी हुआ और महात्मा को एक रात्रि निवास के लिए आग्रह किया। राजा ने रात भर में, एक लोहार के यहां धौंकनी खींचने का काम करके, एक टका कमाया, वही सुबह दान में दे दिया। महात्मा प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिए। थोड़ा सा भी शुद्ध धन का दान करना बड़े दान से अच्छा है, शुद्ध धन का महत्त्व यहाँ बताया गया।

कृष्ण की नीतिज्ञता

कृष्ण पाण्डवों का दूत बनकर कौरवों को समझाने तथा सुलह कराने के लिए हस्तिनापुर गए। दुर्योधन सुलह करने के लिए तैयार न होकर युद्ध करने पर अडिग रह गया। कृष्ण को बहुत चालाक और दूरदर्शी समझते हुए उसने अपने पक्ष में करना चाहा। दुर्योधन आतिथ्य करने में इतना कुशल था, कि जो उसके यहाँ रूका उसे अपने वश में कर लेता था।

दुर्योधन ने कृष्ण को भोजन करने का आग्रह किया। इस प्रस्ताव पर कृष्ण ने उत्तर दिया कि भोजन दो परिस्थितियों में किया जाता है, एक तो जहाँ प्रेम होता है वहाँ, दूसरे आपत्तिग्रस्त होने पर भोजन करना चाहिए। इनमें से कोई कारण न होने के कारण कृष्ण ने दुर्योधन का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। वहाँ से जाकर विदुर के यहां भोजन किया। विदुर वास्तविक प्रेम करते थे।

शिक्षा मिलती है कि धनी-गरीब का भेद न समझ कर प्रेम के आधार पर संगति करनी चाहिए। दूसरे का भोजन करने में सतर्कता रखनी चाहिए। बिना प्रेम के और पाप का अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिए।

न्यूटन का धैर्य

न्यूटन आधुनिक वैज्ञानिक क्राति का नायक माना जाता है। उसने विज्ञान और गणित के क्षेत्र में आजीवन अन्वेषण किया। प्रसिद्धि प्राप्त करने पर भी उसे अभिमान नहीं था। एक बार उसने कहा, कि विज्ञान की खोज तो समुद्र की तरह अनन्त है। मैं तो किनारे के सीप, घोंघे बीन रहा हूँ। प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर भी गर्व नहीं। एक बार न्यूटन के कुत्ते ने जलती

मोमबत्ती गिरा दिया। मेज पर रखे सभी कागज जल गए। उसमें बीस वर्ष की तपस्या के आविष्कार और सिद्धान्त भी जल गए। न्यूटन इसे देख कर दुखी हुआ। किन्तु धैर्य नहीं छोड़ा। कुत्ते के सिर पर हाथ रखते हुए कहा कि तुम नहीं जानते हो कि क्या कर डाला। पुनः उन अध्यायों को लिखा।

इतने बड़े वैज्ञानिक से निरहंकारता और संवेदना की शिक्षा मिलती है।

अध्याय-6

पिछले अध्याय को दुहराना

1. तुरन्त फायदेमन्द किन्तु बाद में कष्टकर बातों को न करना। बलि पशु की तरह चारा खाना हानिकारक है।
2. जीवन के आरंभ में परिश्रम करके विद्यार्जन, अच्छी बातों की आदत बनाना। बड़ों के साथ रहकर बड़ा होने पर बड़े काम करना तथा वृद्धावस्था में सुखी रहना – यह संकल्प जीवन के आरंभ में ही लेना चाहिए।
3. विवेक ज्ञान बहुत दुर्लभ है। अच्छे बुरे का निर्णय विवेक से होता है।
4. छल-कपट, असत्य, अन्याय को छोड़ कर, लोक-परलोक दोनों जगह सुखी रहने की व्यवस्था जीवन के आरंभ से की जाए।
5. दिखावा करने तथा असत्य से प्रभावित करने वालों से सावधान रहना। सत्य का रास्ता सीधा होता है।
6. एकान्त में गोपनीय बातें कहने व सुनने की आदत न हो। जो कहना या करना हो सबके सामने खुलकर कहें और करें।
7. सत्य की विजय होगी और असत्य का भंडाफोड़ होकर रहेगा – ऐसा विश्वास करो।

भीष्म पितामह

इतिहास में भीष्म प्रतिज्ञा विख्यात है। भीष्म पितामह का नाम, पिता की संतुष्टि के लिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने तथा उसका निर्वाह करने के लिए है। अतुलनीय योद्धा होने की कीर्ति तो उनकी है ही किन्तु उनकी दो प्रतिज्ञाएँ ही उन्हें महान बनाती हैं।

उनके पिता शान्तनु ने जिस कन्या से शादी करना चाहा उसने शर्त रख दिया कि उसका ही पुत्र राजा होना मानने पर विवाह करेगी। शान्तनु के पुत्र भीष्म उस समय बड़े हो चले थे। भीष्म को राज्य से वंचित करने और कामातुरता दोनों के बीच में शान्तनु बहुत दुखी हो गए। भीष्म, पिता की मनोदशा देखकर स्वयं राज्य छोड़ने को तैयार हो गए। उस कन्या ने दूसरी शर्त भी रखा था, कि भविष्य में उसी की सन्तानें राजा बनेगी। इस शर्त को पूरी करने के लिए वह आजीवन ब्रह्मचारी रह गए। अपने जीवन के समस्त सुख और अपने अधिकार को तिलांजलि देते हुए भीष्म ने आजीवन इसका निर्वाह किया। ययाति को पुरु ने जैसे संतुष्ट करके यश प्राप्त किया था, उसी तरह भीष्म पिता की मनोभावना के अनुसार स्वयं उन्हें सन्तुष्ट करके अमर हो गये। भीष्म पितामह का प्रकरण सत्य-प्रतिज्ञ होने और पिता के लिए अपने सुख के त्याग की शिक्षा देता है।

विश्वासघात का फल

एक राजकुमार शिकार करते समय अकेले भटक गया। घोड़े के साथ पेड़ के नीचे बैठा था, तब तक शेर आ गया। राजकुमार पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ चढ़ने पर राजकुमार ने देखा कि एक

विशाल भालू डाल पर बैठा है। राजकुमार डर गया। नीचे शेर है तथा ऊपर भालू। दोनों से मृत्यु का भय हो गया। भालू ने राजकुमार को आश्वस्त किया, कि वह उसे नहीं मारेगा।

शेर वहीं खड़ा रह गया। रात हो गई राजकुमार को थकावट के कारण नींद आने लगी। भालू ने राजकुमार को अपनी गोद में रखकर सोने की व्यवस्था कर दी। कुछ देर बाद जगने पर भालू ने कहा कि अब वह सोएगा और राजकुमार को जगते रहने के लिए सचेत किया। भालू के सो जाने पर राजकुमार को कुबुद्धि आई। उसने सोचा कि शेर के सामने भालू को गिरा देने पर शेर उसे खाकर चला जाएगा। ऐसा ही करने के लिए उसने भालू को ढकेल दिया। भालू उस डाल से गिर कर दूसरी डाल पकड़ कर बच गया।

भालू ने विश्वासघात करने पर राजकुमार को शाप दे दिया जिससे वह पागल हो गया। राजा के द्वारा बहुत इलाज कराने के बाद भी वह ठीक नहीं हुआ। एक ब्राह्मण ने सारी घटना को अपनी अन्तर्दृष्टि से जाना। विश्वासघात के शाप से मुक्त होने की क्रिया की गई। ब्राह्मण ने विश्वासघात को अधम पाप बताया। पाप के उजागर होने पर लाभ हो गया।

इस कहानी का सन्देश यह है, कि विश्वासघात बहुत बड़ा पाप है; जिससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। पाप को स्वीकार करने से पाप कटता है, छिपाने से बढ़ता है।

बौद्ध क्षपणक और नाई

एक राजा की लक्ष्मी धीरे-धीरे जाने लगी और वह गरीब हो गया। देवताओं और पितरों से प्रार्थना किया, जिससे उसके अच्छे दिन लौटने की आशा हुई।

एक दिन राजा ने स्वप्न में लक्ष्मी को देखा। उन्होंने राजा से कहा कि कल सुबह मैं बौद्ध क्षपणक के रूप में आपके पास आऊँगी। घर में क्षपणक को ले जाकर डंडे से मारने पर वह सोने की राशि बन जायेगा।

सुबह राजा नाई से बाल बनवा रहा था तथा स्वप्न की बात सही है या गलत है, इस तरह सोच रहा था। इतने में ही एक बौद्ध क्षपणक आ गया। राजा ने स्वप्न को सही मान लिया। उस क्षपणक को घर में ले जाकर डंडे से मारा तो वह सोने का ढेर बन गया, राजा जब यह सब कर रहा था, तो नाई चुपके से जाकर घटना को देख रहा था।

नाई ने भी धनी बनने के लिए बौद्ध क्षपणक को मारने की योजना बनाई। उसे विश्वास हो गया था कि इससे धनी बन जायेंगे। एक दिन एक क्षपणक गांव में दिखाई पड़ा। नाई सादर उसे घर ले गया और डंडे से मारने लगा। क्षपणक चिल्लाता हुआ बाहर भागा। लोग एकत्रित हो गए और नाई को मारपीट कर क्षपणक को छुड़ाया।

किसी अद्भुत बात को देखकर नकल करने में बहुत भय है। पुरुषार्थ और भाग्य से ही धन मिलता है। राजा के भाग्य और नाई की कुबुद्धि से यह शिक्षा मिलती है।

दो आने की सिद्धि

स्वामी रामतीर्थ बहुत ज्ञानी, पूर्ण विरक्त तथा ब्रह्मनिष्ठ थे। लोक कल्याण के लिए बहुत बड़ा साहित्य भी उन्होंने दिया है। वे प्रदर्शन और आकर्षण करने वाले सन्यासी नहीं थे।

एक बार वे गंगा जी के किनारे खड़े थे। कुछ लोग उनके समीप आ गए। उसी समय एक तपस्वी आया और खड़ाऊ पहने हुए गंगा को पैदल पार कर गया। इस पर लोगों ने रामतीर्थ से पूछा कि क्या यह बहुत बड़े सिद्ध हैं? रामतीर्थ ने कहा कि गंगा को पार करने के लिए पूरी नाव दो आने में जाती है। दो आने बचाने के कारण इस सिद्धि का दाम वही दो आना है।

अभिप्राय यही कि सिद्धि का दिखावा तथा लोगों को शिष्य बनाने वाले सही संत नहीं हैं। प्रदर्शन से सावधान रहने का सबक दिया।

अध्याय- 7

पिछले अध्याय को दुहराना

1. महापुरुषों, वैज्ञानिकों, संतों, समाज-सेवियों तथा अन्य उत्कृष्ट कार्य करने वाले लोगों के विषय में कुछ जानकारी मिलने के बाद, उनमें से किस क्षेत्र का महापुरुष पसन्द है, उसको अपना आदर्श बनाना।
2. किसी भी प्रशंसनीय विषय में बड़ा काम करना महापुरुष का लक्षण है।
3. समाज में शिक्षक, सेवक, स्वधर्म-पालक, समाजसेवी, धर्मरक्षक जैसे कामों को करना।
4. जीविका के साधन अन्य होने पर समाजसेवा को मनुष्यत्व का अंग समझना।
5. करिश्मा दिखाने वाले तथा थोड़ी सिद्धि पर लोगों को ठगने वाले पाखंडियों में विश्वास न करके उनसे दूर रहना।
6. भारतीय संस्कृति को समझने के लिए रामायण, महाभारत; इन दो ग्रन्थों को अवश्य पढ़ना चाहिए।
7. थोड़ा स्वाध्याय समझदारी पैदा करने के लिए नित्य किया जाए।
8. आरणीय बातें –

   i - परिश्रम से प्राप्त अर्थ का भरोसा करना

   ii - लोभ का त्याग करना।

   iii - योग्यता बढ़ाना तथा उसका भरोसा रखना।

iv - पाखण्ड की निंदा कर उससे दूर रहना।

v - घर में अच्छी पुस्तकों का संग्रह करना।

कहानियाँ एवं शिक्षाएं –

दानवीर कर्ण

महाभारत की कथा में सैकड़ों चरित्र ऐसे हैं, जिनके जीवन-चरित्र से कोई न कोई प्रेरणा मिलती है। कर्ण योद्धा, मित्र, पुत्र तथा दानवीरता चार बातों के लिए विख्यात है। कर्ण, कुन्ती का पुत्र था, किन्तु पालन-पोषण सूत के यहाँ होने के कारण सूत-पुत्र कहा जाता था। यह पता चलने पर भी, कि वह कुन्ती का पुत्र है, वह अपनी पालन-पोषण करने वाली माता के नाम पर अपने को राधेय ही कहता था। यह उसके कृतज्ञता की भावना को प्रकाशित करता है।

कृष्ण ने कर्ण से बताया कि वह कुन्ती का पुत्र है। उसे सबसे बड़ा भाई होने के कारण राज्य देने का भी प्रलोभन दिया। किन्तु कर्ण ने इसे ठुकरा दिया। दुर्योधन ने राज्य देकर कर्ण पर उपकार किया था। इसके लिए कृतज्ञता तथा दुर्योधन से मित्रता को तोड़ना असंभव बताकर कर्ण कौरवों के पक्ष में ही रह गया। यह उसके कृतज्ञ और आदर्श मित्र होने का उदारण है।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन तथा कृष्ण दोनों केवल कर्ण से भय करते थे। उसको मारने के लिए युद्ध आरंभ होने के पहले से प्रबन्ध करने के बाद भी, अर्जुन ने युद्ध के समय अन्याय का सहारा लेकर उसे मारा। रथ का पहिया फंसने पर वह शस्त्र छोड़कर रथ निकालने में लगा था। उस समय मारना अर्धम था, किन्तु अजेय समझते हुए, भीष्म और द्रोण की तरह कर्ण को भी

छल से मारा गया। उसका पराक्रम अद्वितीय था, यह प्रमाणित होता है।

कर्ण सबसे अधिक अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध है। दान के कई आख्यान उसके जीवन में मिलते हैं। उसके पास सूर्य का दिया हुआ कुण्डल-कवच था, जिसे धारण करके वह अजेय रहता था। इन्द्र ने छलपूर्वक इसका दान मांगा तो कर्ण ने उसे भी दे दिया। यह आश्चर्यजनक दान था। एक तरह से अपने प्राण ही देकर वह अमर दानवीर बन गया। इन्द्र ने कर्ण को बदले में वज्रास्त्र दिया था तब दान लेने के उपकार का आभार सहन कर सके।

इस तरह कर्ण चार बातों के लिए प्रेरणादायक है। उनमें मित्रता एवं दानवीरता अद्‌भुत है।

रघु का साहस और धर्मपालन

राजा दिलीप की बड़ी तपस्या के सफल होने पर नन्दिनी गाय के आशीर्वाद से रघु पैदा हुए थे। रघु के प्रताप, धर्मपालन तथा नीति निपुण राजा होने के कारण इनके वंश का ही नाम रघुवंश हो गया। श्रीराम इसी कुल में पैदा हुए थे।

रघु के पराक्रम से इन्द्र भी प्रभावित हो गए थे। दिलीप के अश्वमेध यज्ञ में रघु घोड़े के मुख्य रक्षक थे। यज्ञ पूरी होने पर दिलीप भी शतक्रतु हो जाते, जो केवल इन्द्र हैं। ईर्ष्यावश इन्द्र, रघु से घोड़ा छीनने आ गए। घोर युद्ध हुआ। इन्द्र के सभी अस्त्र विफल होने पर उन्होंने नवयुवक रघु पर वज्र चला दिया। वज्र लगते ही रघु धाराशायी हो गये। इन्द्र घोड़ा लेकर अदृश्य होकर जाने लगे। इतने में रघु को होश आ गया। घोड़ा दिखाई न पड़ने के कारण रघु दुखी हुए। तब तक नन्दिनी गाय आकर उन्हें अंजन

लगाने के लिए दिया। दिव्य दृष्टि से रघु ने इन्द्र और घोड़ा देखकर पुनः युद्ध के लिए ललकारा। वज्र प्रहार से बच जाने पर इन्द्र को आश्चर्य हुआ। रघु की प्रशंसा करते हुए इन्द्र ने वरदान देकर दिलीप का यज्ञ पूरा कराया। यह था रघु का प्रताप और साहस।

रघु ने अपनी आज्ञाकारिता तथा सदगुणों से पिता को पूर्ण सन्तुष्ट किया था।पिता दिलीप वृद्धावस्था में वन जाने लगे तो आग्रह कर रघु ने उन्हें राजधानी के पास आश्रम बनाकर रहने को राजी कर लिया। यह थी उनकी पितृसेवा।

विश्वजित यज्ञ में सब कुछ दान देने के बाद अकिंचन रघु के पास स्नातक कौत्स याचना करने पहुँचा। कौत्स रघु के स्वरूप को देखकर जान गया, कि उनके पास कुछ नहीं है। अतः निराश जाने लगा। रघु के बहुत पूछने पर उसने बताया कि गुरु-दक्षिणा देने के लिए धन माँगने आया था। इस पर रघु ने उसे यथाकाम स्वर्ण मुद्रा देने को आश्वस्त करके रोक लिया। कुबेर को पराजित करके धन लेने की तैयारी करने लगे। तब तक कुबेर ने स्वयं इतना धन भेज दिया, जो कौत्स को देने के बाद भी बच गया। कौत्स ने अधिक लेने से इनकार किया दिया और रघु सब कुछ देने पर उद्यत रहे। यह उनका पराक्रम, धर्मपरायणता तथा दानवीरता की दास्तान है। यह सब पिता के आशीर्वाद से हुआ। कौत्स ने देखा कि राजा के पास सब कुछ है, किन्तु पुत्र का अभाव है। उसने रघु को आशीर्वाद देकर पुत्र पाने का वरदान दिया।

इस प्रसंग को पढ़ने से राजा रघु तथा कौत्स दोनों के आचरण के अनुकरण की शिक्षा मिलती है। दान देने तथा लोभ का त्याग एक ही घटना में सिखाए गए हैं।

ध्रुव

मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थी। राजा छोटी रानी से प्रेम अधिक करते थे। बड़ी रानी से प्रेम कम था। बड़ी रानी को ध्रुव नामक तेजस्वी पुत्र था। राजा छोटी रानी के पुत्र को गोद में लेते थे, तो बालक ध्रुव को भी पिता की गोद में बैठने की इच्छा होती थी। ऐसा न करने पर बालक ने अपनी माँ से अपना दुःख व्यक्त किया। माँ ने ध्रुव को बहुत बड़ी शिक्षा दिया। उसने बताया कि ईश्वर की गोद में बैठने से सबसे अधिक सुख मिलेगा। उसके लिए कामना करना चाहिए। बालक ने माँ से उपाय पूँछकर ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए तपस्या आरम्भ कर दिया।

निर्मल हृदय होने के कारण ईश्वर प्रसन्न हो गए। दिव्य पुरुष के रूप में आकर ध्रुव को गोद में बैठाया। स्वर्ग में स्थाई स्थान पाने का वरदान देकर ध्रुव को कृतकृत्य कर दिया तपस्या पूरी होने पर माता भी सुखी हो गयी। ध्रुव का नाम माता की आज्ञा को मानने तथा तप करके अमर होने के लिए प्रसिद्ध है। निर्मल हृदय होकर तपस्या से सब संभव है।

शंकराचार्य

केरल प्रदेश के कालड़ी ग्राम में आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पहले शंकराचार्य का जन्म हुआ था। इनके पिता नैष्ठिक ब्राह्मण और शिवभक्त थे। इच्छानुरूप पुत्र को प्राप्त करके माता-पिता कृतकृत्य हो गए। प्रखर बुद्धि के कारण पांच वर्ष की आयु में ही सभी शास्त्रों को पढ़ लिया। पिता प्रारम्भिक शिक्षा देने के काल में ही स्वर्गवासी हो गए। माता के लिए अनमोल पुत्र ही सब कुछ था।

शंकराचार्य ने बाल्यावस्था में ही सन्यासी होने का संकल्प बना लिया। उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण था, तथा सहजरूप से बहुत-सी सिद्धियाँ उनके स्मरण में आने लगी। अपने को अल्पायु तथा विशेष कार्य के लिए इस लोक में आने का उन्हें ज्ञान हो गया।

माता से सन्यासी होने के लिए आज्ञा मांगते थे, तो माता आज्ञा नहीं देती थी। अपने को असहाय बताकर रोक लेती थी। एक दिन अद्भुत घटना घटी, पूर्णा नदी में माता और पुत्र स्नान कर रहे थे, तब तक मगर ने आकर शंकर को पकड़ लिया। माता रोने लगी। शंकराचार्य ने माता से कहा कि सन्यास लेने के लिए आज्ञा देने को मानने पर मगर छोड़ देगा। लाचार होकर माता ने स्वीकृति दे दी। शंकराचार्य को मगर छोड़ कर चला गया।

आठ वर्ष की उम्र में ही सन्यासी बन गए। घर से जाते समय माता को वचन दिया कि उसके अन्तिम समय में आ जाऊँगा।

केरल से चलकर ओंकारेश्वर में सीधे अपने गुरु गोविन्दपाद के पास पहुँच गए। गुरु ने आते ही उन्हें सबसे प्रिय शिष्य बना लिया और शीघ्रता पूर्वक सारी विद्या दे दिया।

अन्य शिष्य शंकराचार्य से ईर्ष्या करने लगे। एक दिन नर्मदा में इतनी तेज बाढ़ आई कि गुफा में समाधिस्थ गुरु के डूबने की स्थिति हो गई। सभी शिष्य कुछ न कर पाए। शंकराचार्य ने गुफा के मुंह पर एक पात्र लगा दिया। जिसमें बाढ़ का सारा पानी जाकर सूख गया। गुरु सुरक्षित रह गए। इस घटना के बाद शंकराचार्य को सभी अद्वितीय मानने लगे। तीन वर्षों तक शिक्षा लेकर आचार्य शंकर सभी विद्याओं में पारंगत, सर्वज्ञ हो गए।

माता की मृत्यु के समय आकाश मार्ग से जाकर माता को सन्तुष्ट किया तथा अन्त्येष्टि करने के बाद लोकोपकार के मार्ग पर चल पड़े।

अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा के लिए भाष्य ग्रन्थों को लिखकर वे अमर हो गए। पूरे देश में पैदल भ्रमण करके शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना धर्म स्थापित किया। भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म में जो कुछ अच्छी बातें प्राप्त हैं, सब शंकराचार्य की देन है। अब भी उनके नाम पर सभी को श्रद्धा है। बत्तीस वर्ष की उम्र में ही उन्होंने समाधि ले लिया। आचार्य शंकर की जीवनी तथा उनका दर्शन समझकर सभी प्रेरित एवं कृतार्थ हो सकते हैं। ऐसा अदभुत चरित्र का व्यक्ति उनके बाद नहीं पैदा हुआ। अब भी आचार्य शंकर ही सनातन वैदिक धर्म के दीपस्तंभ हैं। शंकराचार्य के दर्शन के आधार पर ही विश्व में भारतीय चिन्तन की प्रतिष्ठा है।

मधुसूदन सरस्वती

काशी में अपने शास्त्रज्ञान और साधना से अमर होने वाले लोगों में मधुसूदन सरस्वती का नाम अमर है। यह तुलसीदास से थोड़ा सा पहले ही काशी में प्रतिष्ठित हो चुके थे। तुलसी दास को इन्होंने सहायता और संरक्षण भी दिया था।

मधुसूदन का जन्म बंगाल के विद्या केन्द्र शान्तनपुर के पास हुआ था। तर्कशास्त्र तथा भक्ति की साधना के लिए लोग यहां पढ़ने जाते थे। इनके पिता एक विद्वान पंडित थे। बाल्यावस्था में ही मधुसूदन प्रतिभा सम्पन्न लगते थे। बारह वर्ष की उम्र में संस्कृत में श्लोक रचना कर लेते थे। इनके पिता का सम्मान स्थानीय

राजा भी करते थे। एक बार मधुसूदन सरस्वती के पिता अपने इस बालक को लेकर राजा के यहां गए। पानी के कारण नाव से जाना पड़ता था। कई घण्टे का रास्ता था। राजा के यहां पहुँचने पर कई दिन तक अतिथि गृह में उन्हें रोक लिया गया। किन्तु राजा को मिलने का समय नहीं मिला। अपने बालक की प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए कई दिन रुकने के बाद भी राजा से भेंट न होने के कारण वे लोग वापस चल दिए। नाव से यात्रा करते समय एकाएक बालक मधुसूदन ने जोर से कहा—'पिता जी मैंने निश्चय कर लिया।' पिता ने पूछा क्या निश्चय है। बालक राजा के न मिलने से अपमान महसूस कर चुका था। उसने कहा कि अब किसी मनुष्य से नहीं, परमेश्वर से भेंट करेंगे। इसके लिए बालक ने सन्यास लेने का प्रस्ताव तत्काल कर लिया। पिता कुछ निश्चय नहीं कर सके। उन्होंने कहा कि सन्यास के लिए माता की आज्ञा आवश्यक है, यह भी कहा कि विद्वान होकर सन्यास लेना उचित होता है। बालक ने दोनों बातें मान ली, लेकिन गृह-त्याग करके जाने का संकल्प नहीं छोड़ा।

माता के पास पहुँचते ही मधुसूदन ने उससे प्रतिज्ञा कराके एक ही बात मानने को कहा। माता के प्रतिज्ञा करने पर सन्यास की आज्ञा देने के लिए मांग किया। बहुत देर तक चुप रहने के बाद माता ने भी आज्ञा दे दी।

बारह वर्ष की उम्र में घर से निकल कर शास्त्रों का अध्ययन किया। बाद में अद्वैत वेदान्त के खण्डन के लिए काशी में आकर सर्वश्रेष्ठ विद्वान खोजकर शिष्य बने। वेदान्त पढ़कर गुरु को पराजित करने का संकल्प उनके मन में था। अध्ययन पूर्ण होने पर मधुसूदन अद्वैत सिद्धान्त को ही स्वीकार कर लिये। अपने गुरु

से मन के कष्ट को प्रकट करते हुए प्रायश्चित बताने को कहा तो गुरु ने उन्हें सन्यासी बनने का आदेश दे दिया। वे तत्काल विद्वान सन्यासी मधुसूदन सरस्वती हो गए।

इस तरह मनोकामना पूर्ण होने पर वे काशी में ही रह कर शास्त्रों के लेखन तथा अध्यापन में लगे रहे। बादशाह अकबर भी उनका बड़ा सम्मान करता था। वे एक सिद्ध पुरुष थे। जब तुलसीदास को काशी के ब्राह्मण कष्ट देने लगे थे, तो मधुसूदन सरस्वती ने तुलसी की प्रशंसा करके उन्हें प्रतिष्ठित किया था। बाल्यावस्था में स्वाभिमान जाग्रत होने से मधुसूदन सरस्वती महान विद्वान और सिद्ध बन गये।

अध्याय- 8

पिछले अध्याय को दुहराना

1. नैतिक शिक्षा का आजन्म पालन हेतु संकल्प लेना।
2. प्रेरक प्रसंगों एवं चरित्रों, घटनाओं को स्मरण करना तथा दूसरों को भी सुनाना।

आदरणीय बातें और इनके विषय में कथाएं पढ़ना। उदाहरण –

धर्म की रक्षा (दिलीप आख्यान)

स्वाभिमान की रक्षा (शिवाजी, राणा प्रताप आदि)

देश-प्रेम - मालवीय जी आदि निर्लोम देश सेवी

परोपकार - जटायू की कथा

समाज सेवा (मदर टेरेसा जैसी भावना)

धन का सदुपयोग (गान्धी आदि से शिक्षा)

पाखण्ड विरोध (आधुनिक पाखण्डी सन्तों से सावधान)

3. बड़ों का आदर करना। आशीर्वाद लेना।
4. धन तथा बाहुबल के प्रयोग से बढ़ने वाले समाज के शत्रु हैं। अतः आधुनिक राजनीति से दूर रहना।
5. राजनीति में जाने की इच्छा हो तो पहले धर्मनीति का पालन करें।

पतिव्रता स्त्री का प्रभाव

जाजलि नामक एक तपस्वी एकांत जंगल में रह कर तपस्या करते थे। तप के बल से वो शक्तिशाली हो गये थे। एक बार पेड़ के नीचे बैठे थे, पेड़ पर बैठी एक बगुली ने बीट कर दिया, जो जाजलि तपस्वी के ऊपर गिरा। तपस्वी ने क्रोध करके बगुली को देखा, तो वह जलते हुए भूमि पर गिर पड़ी। अपना प्रभाव देखकर जाजलि को अहंकार हो गया।

उसी दिन भिक्षाटन के लिए वह तपस्वी एक दरवाजे पर आवाज दिए। घर में गृहस्थ की पत्नी ने आवाज सुना, किन्तु आवश्यक काम में व्यस्त रहने के कारण बाहर निकलने में उसे विलम्ब हो गई। जाजलि ने उस स्त्री को क्रोध भरी दृष्टि से देखा। स्त्री ने समझ लिया कि तपस्वी महाराज विलम्ब होने के कारण क्रोध कर रहे हैं। इस पर उस स्त्री ने जाजलि से कहा – महाराज मैं बगुली नहीं हूँ। मैं पतिव्रता स्त्री हूँ। जांजलि को आश्चर्य हुआ कि जंगल की घटना आज की ही है। इस स्त्री को बगुली की कथा कैसे मालूम हुई। उनका क्रोध शान्त हो गया। उस स्त्री से जानने का स्त्रोत पूछा, तो उसने बताया कि पतिव्रता का धर्म तपस्या से कम नहीं है। उसी के बल से मुझे सब मालूम हो गया। जाजलि ने विनम्र होकर उस स्त्री की बात को स्वीकार कर लिया। उस स्त्री के कहने पर और शिक्षाएं लेने भी चले गये।

तुलाधर वैश्य की कथा

पतिव्रता स्त्री ने ही जाजलि को धर्मोपदेश लेने के लिए तुलाधार वैश्य के यहाँ भेजा था। तुलाधार के यहां पहुँचने पर उस

वैश्य ने जाजलि का सत्कार किया। उनके विश्राम करने के बाद वैश्य ने पूछा कि कौन सी सेवा की जाए। जाजलि ने प्रश्न किया कि आप बडे धर्मनिष्ठ माने जाते हैं। कौन से धर्म का पालन करके आप प्रतिष्ठित हुए हैं। इस प्रश्न पर तुलाधार ने संकोचपूर्वक बताया कि वह केवल अपने धर्म का पालन सच्चाई से करता है। स्वधर्म पालन और सत्य का सेवन यही दो धर्म उसके व्यवसाय में संभव हैं। विनम्रता तथा अतिथि सत्कार आदि गुण उसी धर्म से प्राप्त होते हैं।

जाजलि, तुलाधार से ली गई शिक्षा को ग्रहण करके प्रसन्न हुए। तुलाधार के बताने पर वे धर्म को जानने के लिए आगे चले गए।

धर्मव्याध की कथा

तुलाधार के बताने के अनुसार जाजलि तपस्वी धर्मव्याध के यहां पहुँच गए। व्याध ने मांस विक्रय का काम करने के कारण अपने को अस्पृश्य समझते हुए जाजलि को प्रतीक्षा करने के लिए आग्रह किया। अपने काम से विरत होकर, स्वच्छ शरीर होने पर व्याध ने जाजलि से आगमन का कारण पूछा। जाजलि ने बताया कि वे धर्मज्ञान के लिए उपस्थित हैं। कौन सा धर्म है, जिससे व्याध की प्रतिष्ठा है।

इस प्रश्न पर धर्म व्याघ जाजलि को अपने घर ले गये। वहाँ अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करने के बाद उसने जाजलि को बताया कि उसका एक मात्र धर्म माता-पिता की पूर्ण सेवा करना है। इसी धर्म के बल पर उसकी सारी इच्छाएं पूरी होती रहती हैं।

इस तरह तीन स्थानों पर तीन तरह का धर्म जाजलि ने जाने।

तपस्या में निरहंकार रहने, पतिव्रता स्त्री की महिमा, स्वधर्म एवं सत्य का पालन तथा माता-पिता की सेवा, इन बातों की शिक्षा इन कथाओं से मिलती है।

अतिलोभ का फल

लोभ करना मनुष्य का स्वभाव है। किन्तु अतिलोभ करने पर पहुत कष्ट होता है। एक ब्राह्मण बहुत लोभी था। अधिक दान पाने पर भी वह संतुष्ट नहीं होता था। अधिक धन स्वयं माँग भी लेता था। इस पर नाराज होकर एक साधु ने उसे सजा देने के लिए सोचा। उस ब्राह्मण को बता दिया, कि दक्षिण दिशा में बढ़ता जाय तो एक व्यक्ति मिलेगा जो उसे पूर्ण रूप से संतुष्ट करेगा। लोभ के कारण वह ब्राह्मण दक्षिण दिशा में चलता गया। दूर जाने पर उसने देखा कि एक आदमी दौड़ता हुआ उसकी तरफ आ रहा है। वह प्रसन्न हुआ, कि अब मनोकामना पूरी हो जाएगी। किन्तु उस आदमी के पास आने पर महान विपत्ति आ गई। आने वाले आदमी के सिर पर एक चक्र नाच रहा था। वह चक्र उस आदमी को छोड़ कर लोभी ब्राह्मण के सिर पर नाचने लगा। वह व्याकुल हो गया।

व्याकुलता में ब्राह्मण ने उस आदमी से पूछा कि यह क्या हुआ। उत्तर मिला कि वह आदमी बहुत लोभी था। किसी के शाप के कारण यह चक्र उसके सिर पर नाचने लगा था। शाप देने वाले साधु ने कहा कि जब कोई तुमसे अधिक लोभी मिलेगा, तो चक्र उसके सिर पर चला जाएगा। वह आदमी व्याकुल घूमता रहा। इस लोभी को पाकर उसने अपना चक्र देते हुए कहा कि अब मैं जा रहा हूँ। तुम अपने से भी अधिक लोभी के मिलने तक यह दुर्दशा भोगते रहो।

अभिप्राय यह है कि अति लोभ नहीं करना चाहिए, बुरी बातों से बदनाम होने पर बड़ी विपत्ति आती है।

संत तुकाराम

महाराष्ट्र के संत तुकाराम विख्यात भक्त हुए हैं। वे शिवाजी के समय में थे। जाति के वैश्य थे। पैतृक संपत्ति तथा व्यापार की पूंजी अपने भजन-पूजन में लगे रहने के कारण समाप्त कर बैठे। उनकी पत्नी तथा तीन बेटियाँ पालन-पोषण के लिए थी। भोजन की व्यवस्था भी नहीं रह गई। लड़कियों की शादी की चिन्ता में पत्नी बहुत कुटिल व्यवहार करने लगी।

एक दिन भोजन सामग्री की व्यवस्था में तुकाराम घर से गए। रात होने पर कुछ सामग्री के बिना, केवल एक ईख लेकर घर पहुँचे। पत्नी ने क्रोध में आकर ईख से ही उन्हें मारा। ईख के पांच टुकड़े हो गए। तुकाराम ने कहा चलो तोड़ना नहीं पड़ेगा। सबके लिए एक एक टुकड़ा हो गया। सहनशीलता का यह उदाहरण है।

एक दिन तुकाराम घूमने निकले तो तीन नवयुवक खेलते हुए मिले। उनसे पूँछताँछ करके उन्हें घर ले आए और तीनों लड़कियों की शादी एक साथ ही कर दिया। लड़कियां सुखी रहने लगी। माँ की भी व्यवस्था लड़कियां देख लेती थी। सब गृहस्थी शीघ्र ही ठीक हो गई।

संत तुकाराम इतने सिद्धपुरुष थे, कि शिवाजी भी उनके सत्संग में जाते थे। एक बार शिवाजी तुकाराम के सत्संग में थे, उसी समय मुगल सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। तुकाराम अपने अन्तर्दृष्टि से गंभीरता समझ गए। उनकी कुटी में से एक व्यक्ति शिवाजी की तरह का निकल कर भागा। सैनिक उसी का पीछा

करते हुए चले गये। बाद में शिवाजी सुरक्षित चले गए। इतनी सिद्धि होने के बाद भी तुकाराम निरहंकार रहते थे। शिवाजी ने उन्हें गुरु बनाने के लिए आग्रह किया, तो तुकाराम ने उन्हें समर्थ गुरु रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी को शुद्ध भक्त नहीं, कर्मयोगी भक्त को गुरु बनाने की आवश्यकता समझकर उन्हें समर्थ गुरु के पास भेजा था। शुद्ध भक्त अपने जैसा भक्त और समर्थ तो पैदा कर सकता है किन्तु राज-सत्ता चलाने की भी योग्यता देने के लिए समर्थ गुरु रामदास को ही योग्य गुरु समझा गया।

इस तरह निरहंकार रहकर ईश्वर उपासना तथा उचित उपदेश देने के लिए तुकाराम विख्यात हैं। बड़े लोगों को शिष्य बनाने की इच्छा गुरुओं को होती है। इसका त्याग करके संत तुकाराम बहुत बड़े बन गए। उनका आचरण त्याग, सरलता और सहनशीलता की शिक्षा देता है।